

## इकाई 5 भारतीय उद्योग की अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता

### इकाई की रूपरेखा

- 5.0 उद्देश्य
- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 प्रतिस्पर्धात्मकता के माप
- 5.3 प्रतिस्पर्धात्मकता के प्रमाण
- 5.4 कमजोर प्रतिस्पर्धात्मकता के कारण
  - 5.4.1 प्रतिस्पर्धात्मकता और सरकार की नीति
  - 5.4.2 प्रतिस्पर्धात्मकता और अर्थव्यवस्थावार (economy-wise) घटक
- 5.5 सुझाए गए उपचार
  - 5.5.1 अनुकूल समष्टि परिवेश के सृजन के उपाय
  - 5.5.2 फर्म स्तर पर उपाय
  - 5.5.3 अन्तरराष्ट्रीय संरक्षणवाद का मुकाबला करने के उपाय
- 5.6 सारांश
- 5.7 शब्दावली
- 5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ
- 5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

### 5.0 उद्देश्य

अर्थव्यवस्था में खुलापन आने के साथ, भारतीय उद्योग को कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है। भूमंडलीकरण का अर्थ बाज़ार की शक्तियों का स्वतंत्र रूप से कार्य करना है। भारतीय उद्योगों को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए स्वयं को भूमंडलीकरण के अनुरूप ढालना होगा तथा अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में प्रतिस्पर्धा का सामना करना होगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रतिस्पर्धात्मकता का अर्थ और महत्त्व समझ सकेंगे;
- उद्योग की अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता के माप की पहचान कर सकेंगे;
- अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में भारतीय उद्योग के प्रतिस्पर्धात्मकता के स्तर की जाँच कर सकेंगे;
- भारतीय उद्योग की कमजोर प्रतिस्पर्धात्मकता का कारण जान सकेंगे;
- यह मूल्यांकन कर सकेंगे कि भारतीय उद्योग की वर्तमान स्थिति के लिए समष्टि वातावरण कहाँ तक उत्तरदायी है; और
- उद्योग की प्रतिस्पर्धात्मकता को सुदृढ़ बनाने के लिए एक कार्य योजना बना सकेंगे।

### 5.1 प्रस्तावना

अर्थव्यवस्था में खुलापन आने के साथ एवं भुगतान संतुलन की दृष्टि से तथा बाज़ार के सृजन और विस्तार के साधन के रूप में निर्यात पर क्रमशः बढ़ते हुए जोर से औद्योगिक इकाइयों की 'प्रतिस्पर्धात्मकता' केन्द्रीय महत्त्व का विषय हो गया है। प्रतिस्पर्धात्मकता का तात्पर्य एक उत्पादक द्वारा अपने प्रतिस्पर्धी उत्पादकों की उपस्थिति में अपने उत्पादों के लिए उपभोक्ताओं में पसंद पैदा करने का सामर्थ्य है। प्रतिस्पर्धात्मकता कई निमित्तों का

मूल्य है जिसमें से निःसंदेह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निमित्त वह मूल्य है जिस पर उत्पाद की बिक्री की पेशकश की जाती है। एक प्रतिस्पर्धी बाज़ार में जहाँ एक ही प्रकार के अनेक उत्पादों की पेशकश विभिन्न उत्पादकों द्वारा की जाती है, स्वयं मूल्य का निर्धारण उत्पादन लागत के आधार पर होता है। उत्पादन लागत उत्पादकता और आदानों के उपयोग में दक्षता को प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त, प्रतिस्पर्धात्मकता खरीदारों को पेश की गई ऋण सुविधाओं, अल्प सूचना पर विदेशी खरीदारों की माँग पूरी करने की क्षमता, गुणवत्ता के प्रति कटिबद्धता तथा ब्राण्ड की पहचान इत्यादि जैसे अन्य अनेक कारकों के समूह से भी प्रभावित होता है। हमारी रुचि इस संदर्भ में ही भारतीय उद्योग की अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता का अध्ययन करने में है।

## 5.2 प्रतिस्पर्धात्मकता की माप

अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य में प्रतिस्पर्धात्मकता की पैमाइश के लिए विभिन्न माप हैं। इनमें से, विशेषकर अधिक महत्त्वपूर्ण माप निम्नलिखित हैं :

- i) प्रतिस्पर्धात्मकता की माप का एक तरीका निर्यात निष्पादन की सफलता की सीमा है। यदि हम मान लेते हैं कि निर्यात लाभप्रद हैं, तब निर्यात अभिविन्यास और/अथवा खरीदार देश/देशों के बाज़ार में हिस्सा प्रतिस्पर्धात्मकता की माप हो सकता है।

यह निर्यात सफलता अथवा प्रतिस्पर्धात्मकता मूल्य और अन्य गैर-मूल्य कारकों में प्रतिस्पर्धात्मकता के कारण होता है।

सामान्यतया निर्यात में सफलता के लिए मूल्य प्रतिस्पर्धात्मकता आवश्यक होता है किंतु यह अकेले पर्याप्त नहीं होती है। और इसके लिए इसके अतिरिक्त बाज़ार संबंधी जानकारी, विपणन कार्यकुशलता और क्षमता, बड़े पैमाने पर माँग पूरी करने की क्षमता और माँग के अनुरूप उत्पादों के अनुकूलन के सामर्थ्य की भी आवश्यकता होती है। यह संभव है कि जानबूझकर उत्पाद में विभेद करने अथवा अन्यथा भी, एक उत्पाद बाज़ार में अग्रणी स्थान रखता है। इस मामले में, इसकी प्रतिस्पर्धात्मकता मुख्य रूप से मूल्य की अपेक्षा छवि और गुणवत्ता जैसे कारकों पर निर्भर होता है।

प्रतिस्पर्धात्मकता के निर्यात हिस्सा माप का लाभ यह है कि यह मूल्य और गैर-मूल्य घटकों दोनों की गणना करता है। हालाँकि, यह माप तब अपर्याप्त सिद्ध हो सकता है जब निर्यात हानिप्रद मूल्य स्तर पर किए जाएँ अथवा यदि निर्यातक जानबूझकर अपनी पूरी क्षमता तक निर्यात नहीं करते हैं, जो कि संभवतया घरेलू बाज़ार की बाध्यताओं के कारण होता है अर्थात् उनमें निर्यात करने का सामर्थ्य तो होता है किंतु निर्यात करने का इच्छा का अभाव होता है।

इन समस्याओं को देखते हुए प्रतिस्पर्धात्मकता के कुछ अन्य माप विकसित किए गए हैं।

- ii) दूसरा माप, मूल्य सूचकों पर आधारित है। निर्दिष्ट उद्योगों में अन्तरराष्ट्रीय मूल्य की तुलना सबसे सीधा मूल्य सूचक है। किन्तु तुलनात्मक आँकड़ों की कमी के कारण प्रतिस्पर्धात्मकता के इस माप का बहुत ही कम व्यावहारिक महत्त्व रह जाता है।
- iii) एक अधिक जटिल सूचक संरक्षण की प्रभावी दर है, जो घरेलू मूल्यों में मूल्य संबर्द्धन, विश्व मूल्यों में मूल्य संबर्द्धन की तुलना में कितना अधिक है, की माप है।
- iv) एक अन्य माप घरेलू संसाधन लागत है जो डॉलर अर्जित करने या बचत करने की दक्षता का मूल्यांकन करता है।

प्रतिस्पर्धात्मकता के उपर्युक्त मापों के सभी विकल्पों में सबसे सरल और उपयोगी विकल्प, अन्तरराष्ट्रीय निर्यात में एक देश के हिस्से का अनुमान करना है। यह एकल आंकड़ा समझने

में सरल और राष्ट्र की प्रतिस्पर्धात्मकता के बारे में एक सुन्दर स्पष्ट तस्वीर प्रस्तुत करने में उपयोगी है।

हालाँकि, यहाँ यह भी बताने की आवश्यकता है कि यद्यपि हम बहुधा राष्ट्र की प्रतिस्पर्धात्मकता के बारे में सुनते हैं किंतु एक राष्ट्र अपनी संपूर्णता में कभी भी प्रतिस्पर्धी नहीं है। प्रतिस्पर्धात्मकता तुलनात्मक लाभ की धारणा की भाँति है जो निर्यात की जा रही वस्तुओं और सेवाओं तथा आयात की जा रही वस्तुओं और सेवाओं के बीच तुलना होती है। अतएव, विशेष कार्यकलापों, क्षेत्रों, उद्योगों और फर्मों की प्रतिस्पर्धात्मकता पर विचार करना अधिक उपयोगी है।

### बोध प्रश्न 1

1) अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) प्रतिस्पर्धात्मकता के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एक मापदंड क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

### 5.3 प्रतिस्पर्धात्मकता के प्रमाण

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि एक राष्ट्र की अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता की सबसे महत्त्वपूर्ण माप अन्तरराष्ट्रीय निर्यात में उसका हिस्सा है।

हम इसी पृष्ठभूमि में विगत पाँच दशकों के दौरान भारत के निर्यात रुझान का अध्ययन करेंगे। इससे हमें भारतीय उद्योगों के अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता के बारे में राय बनाने में सहायता मिलेगी।

वर्ष 1950-51 में भारत के निर्यात का कुल मूल्य 606 करोड़ रुपये था। यह अनुमान लगाया गया है कि यह बढ़ कर वर्ष 2000-01 में 2,01,674 करोड़ रुपये हो गया है।

सापेक्षिक रूप से, वर्ष 1950-51 के दौरान भारत का कुल निर्यात भारत के सकल घरेलू उत्पाद में 6.8 प्रतिशत था, यह अनुपात 2000-2001 में बढ़ कर 8.80 प्रतिशत हो गया।

भारत के निर्यात को उत्पादवार (product-wise) तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है जो निम्नवत् हैं:

- i) निर्यातोन्मुखी विनिर्माता, अर्थात् उन उद्योगों से निर्यात जो मुख्य रूप से निर्यात पर निर्भर हैं;
- ii) घरेलू बाजारोन्मुखी विनिर्माता, अर्थात् उन उद्योगों से निर्यात जो मुख्य रूप से घरेलू माँग पूरी करते हैं;
- iii) गैर-विनिर्माता अर्थात् प्राकृतिक अथवा कृषि क्षेत्र के उत्पाद।

इन तीन समूहों का कुल निर्यात में सापेक्षिक हिस्सा क्रमशः 53 प्रतिशत, 12 प्रतिशत और 35 प्रतिशत रहा है। स्पष्ट तौर पर, विनिर्माता और उसमें भी निर्यातोन्मुखी विनिर्माता का हमारे निर्यात बाजार पर प्रभुत्व रहा है। एक देश, जो औद्योगिकरण की आकांक्षा रखता है, के लिए विनिर्मित वस्तुओं के निर्यात की प्रवृत्ति अच्छी बात है।

तथापि, विश्व निर्यात की वृद्धि की तुलना में भारत के निर्यात की वृद्धि की गति धीमी रही है।

जैसा कि तालिका 5.1 में देखा जा सकता है कि विश्व निर्यात में भारत का हिस्सा 1950-51 में 2.20 प्रतिशत तक था जो कि 1980-81 में घटकर 0.42 प्रतिशत तक कम हो गया था।

पिछली शताब्दी के अस्सी और नब्बे के दशक के दौरान, इस अनुपात में कुछ सुधार हुआ है और यह 0.50 और 0.65 प्रतिशत के बीच घटता-बढ़ता रहा है।

कई विकासशील देशों ने भारत की तुलना में कहीं अधिक निर्यात वृद्धि दर दर्ज की है। इस प्रकार जहाँ भारत का निर्यात (2000-01 के दौरान 44.10 बिलियन अमरीकी डॉलर होने का अनुमान था) 1980-1990 के दौरान डॉलर मूल्य में 5.9 प्रतिशत और 1990-2001 के दौरान 11.3 प्रतिशत की वार्षिक औसत दर पर बढ़ा है, कुछ अन्य विकासशील देशों जैसे चीन (19.9, 13.0) दक्षिण कोरिया (12.0, 15.0), मलेशिया (10.9, 11.0), इत्यादि में तदनुसूची विकास दर काफी अधिक था। विश्व के निर्यातक देशों में भारत का स्थान 1953 में 16वाँ से 1983 में 20वाँ और इस समय और गिरकर 29वाँ हो गया है।

इस प्रमाण से यह तथ्य उभरकर आता है कि भारत के विनिर्माता अपनी कमजोर प्रतिस्पर्धात्मकता के कारण पिछड़ गए हैं।

तालिका 5.1 : चुनिन्दा निर्यात अनुपात

वर्ष	विश्व निर्यात के प्रतिशत के रूप में भारत का निर्यात	भारत की राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में भारत का निर्यात
1950-51	2.20	6.80
1960-61	1.05	4.20
1970-71	0.64	3.80
1980-81	0.42	5.40
1990-91	0.52	6.90
1991-92	0.56	7.20
1992-93	0.52	7.60
1993-94	0.62	8.70
1994-95	0.58	8.70
1995-96	0.64	9.80

1996-97	0.60	9.60
1997-98	0.50	8.36
1998-99	0.50	8.20
1999-2000	0.53	8.50
2000-2001	0.55	8.80
2001-2002*	0.60	9.00

\* अनुमानित

## 5.4 कमजोर प्रतिस्पर्धात्मकता के कारण

भारतीय उद्योग की कमजोर प्रतिस्पर्धात्मकता का कारण उस समष्टि आर्थिक परिवेश में खोजा जा सकता है जिसमें भारतीय उद्योग को अपनी गतिविधियाँ चलानी पड़ती है। इस परिवेश के दो पहलू हैं जो निम्नलिखित हैं:

- 1) सरकारी नीति; और
- 2) अर्थव्यवस्था-व्यापी घटक।

आइए, अब हम इन दोनों की जाँच करें।

### 5.4.1 प्रतिस्पर्धात्मकता और सरकारी नीति

भारतीय उद्योग की अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता पर प्रभाव डालने वाली विभिन्न नीतियों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है; अर्थात्

- 1) आंतरिक प्रतिस्पर्धा को सीमित करने वाली नीतियाँ; और
- 2) बाह्य प्रतिस्पर्धा को सीमित करने वाली नीतियाँ।

#### 1). आंतरिक प्रतिस्पर्धा को सीमित करने वाली नीतियाँ

क) सर्वाधिक व्यापक औद्योगिक नीति वह थी जो उद्योगों की स्थापना, अवस्थिति, विस्तार और विविधिकरण को प्रतिबंधित करती थी। यह औद्योगिक लाइसेंस के माध्यम से किया जाता था जो उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1951 के अंतर्गत सब के लिए अनिवार्य था।

ख) एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार व्यवहार (एम आर टी पी) अधिनियम के माध्यम से बड़े व्यापारिक घरानों की वृद्धि और आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण को नियंत्रित किया जाता था, इसके अंतर्गत बड़े अथवा अन्तर्संबंधित फर्मों को निवेश करने से पूर्व अनुमति लेना पड़ता था और वह भी सिर्फ महत्वपूर्ण (कोर) उद्योगों की चयनित सूची में जिसमें उन्हें निवेश करने की अनुमति थी।

ग) घरेलू उद्योग में विदेशी निवेश की दिशा को हमेशा तय तथा इसे नियंत्रित किया गया है। वहीं तकनीकी सहयोग की अनुमति अलग-अलग मामलों के गुण-दोष के आधार पर दी जाती थी। विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1973 ने विदेशी इक्विटी नीति को और कड़ा कर दिया तथा उच्च प्रौद्योगिकी अथवा निर्यातोन्मुखी उद्यमों को छोड़ कर अधिकतम 40 प्रतिशत विदेशी इक्विटी की स्वीकृति थी।

घ) औद्योगिक नीति की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता लघु क्षेत्र के उद्योगों को दी गई विभिन्न

रियायतें हैं जिसमें 800 से अधिक उत्पादों को अनन्य रूप से लघु क्षेत्र के उद्योगों में विनिर्माण के लिए आरक्षित कर दिया गया है, उनके लिए वित्तीय और ऋण रियायतों, इत्यादि की भी व्यवस्था की गई है।

- ड) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को अधिक महत्त्व दिया गया, कतिपय महत्त्वपूर्ण उद्योग उनके लिए आरक्षित कर दिए गए और उन्हें खरीद तथा मूल्य के संबंध में भी प्राथमिकता दी गई।
- च) सरकार ने कतिपय उपभोक्ता वस्तुओं जैसे चीनी, इस्पात, उर्वरक, पेट्रोलियम उत्पाद, औषधियाँ और कागज के लिए प्रशासनिक मूल्य लागू किया। इनमें से अधिकांश वस्तुएँ तथा कुछ अन्य उत्पाद वितरण नियंत्रण के अधीन भी थे।
- छ) अवस्थिति संबंधी नीतियाँ जो पिछड़े क्षेत्रों में निवेश का मार्ग प्रशस्त करती थीं।
- ज) श्रम संबंधी कानून श्रमिकों के पारिश्रमिक, श्रम संबंधों इत्यादि को प्रभावित करते हैं तथा असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के मूल्य पर संगठित क्षेत्र के श्रमिकों को आवश्यकता से अधिक संरक्षण प्रदान करते हैं। श्रम संबंधी कानून संगठित क्षेत्र के उद्योगों द्वारा समायोजन अथवा एक उद्योग को छोड़कर दूसरे उद्योग में जाने में अवरोध उत्पन्न करते हैं, विशेष कर बड़े उद्योगों के लिए यह समस्या और भी गंभीर है।
- झ) अंत में, प्रत्यक्ष और परोक्ष कर अपेक्षाकृत अधिक थे।

## 2) नीतियाँ जो बाह्य प्रतिस्पर्धा को प्रतिबंधित करती हैं

- क) एक तरह से सभी प्रकार का आयात किसी न किसी रूप में लाइसेंस प्रणाली के अधीन था और यह नीति आयातित उत्पाद के प्रकार और उपयोगकर्ता के प्रकार में विभेद करती थी। कुछ आवश्यक वस्तुओं को छोड़कर उपभोक्ता वस्तुओं के आयात पर पाबंदी थी। अर्धनिर्मित कच्चे मालों और पूँजीगत वस्तुओं का आयात या तो बिना लाइसेंस के किया जा सकता था अथवा विभिन्न श्रेणियों के अंतर्गत जारी लाइसेंस पर दिया जा सकता था। लाइसेंस प्रणाली विवेकाधीन थी और प्रत्येक आवेदन को मामले के गुण-दोष के आधार पर निपटाया जाता था।
- ख) मात्रात्मक नियंत्रण प्रणाली के साथ-साथ विश्व में उच्चतम टैरिफ ढाँचा लागू किया गया और इस तरह से बाह्य प्रतिस्पर्धा में एक और बाधा खड़ी की गई।

इसमें आश्चर्य नहीं कि इन सभी नीतियों के परिणाम स्वरूप निर्यात विरोधी पूर्वाग्रह का जन्म हुआ।

## सरकारी नीतियों का प्रभाव

इसमें कोई संदेह नहीं कि कई वर्षों में जिन नीतियों का विकास हुआ उनके पीछे नेक इरादे थे। उन्होंने विशाल और विविधकृत औद्योगिक आधार खड़ा करने में सफलता पाई। किंतु अर्थव्यवस्था को इसके लिए भारी कीमत चुकानी पड़ी।

हम अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता के लिए महत्त्वपूर्ण कुछ कारकों पर नीतियों के प्रभाव के संबंध में विचार करेंगे।

- i) बड़े पैमाने की मितव्ययिता और औद्योगिक संरचना : घटक वृद्धि के अलावा भारत में औद्योगिक नीति ने उद्योगों के सभी क्षेत्रों में प्रसार, लघु उद्योग के संवर्द्धन और आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण को रोकने पर विशेष बल दिया है। इसका एक परिणाम यह निकला कि बहुधा फर्मों अपने संयंत्र आकार का अधिकतम उपयोग नहीं कर सकीं।

यद्यपि कि औसत संयंत्र आकार छोटा था, फिर भी भारतीय उद्योग सरकारी नीतिगत प्रयासों के बावजूद उच्च बाज़ार केन्द्रीकरण और एकाधिकर पूर्ण व्यवहारों के प्रचलन के बोझ तले दबा रहा है।

निःसंदेह समस्या, वास्तव में केन्द्रीकरण में नहीं है अपितु प्रस्पर्धा से संरक्षण में है। अत्यधिक केन्द्रीकरण के कारण विकास में अवरोध, नए उद्योगों की स्थापना का खतरा नहीं होना और आयात प्रतिस्पर्धा के लगभग नगण्य होने से अक्षम फर्मों और एकाधिकर की प्रवृत्ति का प्रसार हुआ।

- ii) प्रभावशाली प्रतिस्पर्धा : भारत में अस्सी के दशक तक निवेश किए गए संसाधनों का लाभप्रद उपयोग सुनिश्चित करना कभी भी नीतिगत कार्य सूची का अंग नहीं था। इसलिए, इसमें आश्चर्य नहीं कि सरकार ने प्रभावशाली प्रतिस्पर्धा, जो औद्योगिक कार्यकुशलता के संवर्द्धन का महत्वपूर्ण तत्व है, की गहनता पर अपनी नीतियों के प्रभाव को नजरअंदाज कर दिया था।

सरकार फर्मों के व्यापारिक निर्णयों को काफी हद तक नियंत्रित करती थी। नए उद्योगों के प्रवेश तथा उनके विस्तार पर नियंत्रण था। अधिकांश औद्योगिक क्षेत्रों की फर्मों को विक्रेता बाज़ार में कार्य-व्यापार की आदत पड़ गई। एक उद्योग में अनेक फर्मों के मौजूद होने के बावजूद भी, उस उद्योग में कतिपय फर्मों का ही वर्चस्व बना रहा। चूँकि वृद्धि नियंत्रित थी इसलिए फर्म की अधिक प्रतिस्पर्धी कार्यकलापों का यह निश्चित परिणाम कतई नहीं था कि उसका बाज़ार में भी बड़े हिस्से पर कब्जा हो। आयात प्रतिस्पर्धा के अभाव का अर्थ यह था कि एकाधिकारवादी प्रवृत्ति पर कोई बाह्य नियंत्रण नहीं था।

- iii) प्रौद्योगिकीय परिवर्तन : औद्योगिकरण करने वाली अर्थव्यवस्था में किसी भी परिस्थिति में कतिपय मात्रा में प्रौद्योगिकीय परिवर्तन अनिवार्य है क्योंकि अधिक विकसित देशों से हस्तांतरित प्रौद्योगिकी को कार्यशील बनाने के लिए प्रौद्योगिकीय परिवर्तन की आवश्यकता होती है। इस प्रौद्योगिकीय परिवर्तन में विनिर्माण आवश्यकताओं के अनुरूप स्थानीय आदानों का अनुकूलन, मात्रा और दक्षता के अनुरूप उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन और यहाँ तक कि स्थानीय माँग को पूरा करने के लिए उत्पादों का अनुकूलन शामिल है।

इसमें पूर्ण सर्वसम्मति है कि प्रौद्योगिकी क्षमता के संवर्द्धन के लिए आरम्भिक चरण में संरक्षण की आवश्यकता होती है। इस अर्थ में भारत की नीतियाँ, कम से कम शुरू में सही दिशा में थीं।

तथापि, इस तरह की नीति से अधिक कार्यकुशल प्रौद्योगिकी के निर्माण के माध्यम से उत्पादकता में सुधार को प्रोत्साहित करने की अपेक्षा बड़े पैमाने पर निष्फल प्रौद्योगिकीय प्रयास भी किए गए।

प्रौद्योगिकीय परिवर्तन को बढ़ावा देने में एक अन्य अनिवार्य आवश्यकता मानव पूँजी में निवेश है। हमने इस पहलू पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। इसका यह परिणाम हुआ कि भारत में जब नई प्रौद्योगिकी का उपयोग शुरू हुआ तो प्रौद्योगिकी-प्रसार की उतनी ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया को जनसाधारण में जागरूकता-स्तर निम्न होने, निरक्षरता और तकनीकी रूप से दक्ष व्यक्तियों के कम अनुपात के कारण, साथ साथ आगे नहीं बढ़ाया जा सका। इसका यह परिणाम हुआ कि उत्पादकता की वृद्धि दर कम रही तथा प्रतिस्पर्धात्मकता की स्थिति भी कमजोर रही।

iv) उद्यमिता : सर्वव्यापी नियंत्रण और विनियमन ने उद्यमियों में बेगार (rent-seeking) की प्रवृत्ति पैदा की। उद्योगपति औद्योगिक लाइसेंस, आयात लाइसेंस इत्यादि हथियाने के प्रयास में अपना बहुमूल्य समय व्यतीत करते तथा अत्यंत ही खर्चीले लॉबीबाजों की सेवाएँ लेते जो कि आर्थिक रूप से उपयोगी कार्यकलापों के मार्ग में बाधक है। इस तरह के व्यवहार को प्रो. जगदीश भगवती ने प्रत्यक्ष अनुत्पादक कार्यकलाप, कहा है। नियंत्रण का दूसरा प्रभाव यह होता है कि यह नियमों-कानूनों से बाहर रहकर आर्थिक कार्यकलाप चलाने को प्रेरित करता है जिसके फलस्वरूप सरकार को राजस्व की हानि होती है और अर्थव्यवस्था में विकृति आती है।

नीतियों में अस्थिरता एक अन्य गंभीर समस्या रही है। सामान्यतया जबर्दस्त लॉबींग अथवा सरकारी पदाधिकारियों के हाथों में महत्वपूर्ण विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग के परिणामस्वरूप नीतियों में बार-बार परिवर्तन होते रहते हैं और यह दीर्घकालीन निवेश योजना के अनुकूल नहीं होता है।

प्रत्यक्ष और परोक्ष करों का उच्च स्तर भी उद्यमिता को हतोत्साहित करता है। प्रत्यक्ष करों के बहुत अधिक होने से कर की चोरी को प्रोत्साहन मिलता है तथा यह विनिर्माताओं को जोखिम उठाने से रोकता है। निष्प्रभावी प्रवर्तन के साथ-साथ उच्च करों के होने से विनिर्माण की अपेक्षा अवरुद्ध परिसम्पत्तियों में और व्यापारिक गतिविधियों में निर्यात को प्रोत्साहन मिलता है।

संक्षेप में, कम से कम पिछली शताब्दी के अस्सी के दशक के अंत तक जो औद्योगिक विनियामक व्यवस्था विद्यमान थी वह लघु उद्योगों, सार्वजनिक क्षेत्र, विदेशी फर्मों के मुकाबले घरेलू फर्मों, रुग्ण फर्मों और संगठित श्रम क्षेत्र को सभी प्रकार का संरक्षण प्रदान करती थी। विक्रेता बाजार में कार्यरत भारतीय उद्योग की उत्पादकता वृद्धि उनके प्रतिस्पर्धियों की तुलना में कम रही और विश्व तथा विकासशील देशों के विनिर्मित वस्तुओं के निर्यात में भारत का हिस्सा घट गया।

नब्बे के दशक के आरम्भ के साथ ही इस नियंत्रण प्रणाली के समाप्त होने की प्रक्रिया शुरू हो गई।

#### 5.4.2 प्रतिस्पर्धात्मकता और अर्थव्यवस्था-व्यापी घटक

भारतीय उद्योग की कम प्रतिस्पर्धात्मकता के अर्थव्यवस्था व्यापी घटकों में से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं:

क) यहाँ सबसे प्रमुख घटक घरेलू माँग की प्रकृति है। घरेलू बाजार में प्रकार्यवादी गुणों से युक्त तथा कम कीमत वाले उत्पादों की अधिक माँग है एवं सुरक्षा, सौंदर्य, उपयुक्तता और बनावट तथा सुविधा को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, भारत में फर्मों विशेषरूप से निर्यात बाजार के लिए भारी निवेश नहीं करती हैं क्योंकि यह अत्यधिक जोखिम-पूर्ण रणनीति है। चूँकि ये फर्मों प्रतिस्पर्धा के अभाव के कारण अत्यन्त ही कम जोखिम पर घरेलू बाजार में भरपूर लाभ कमा रही हैं तो यह स्वाभाविक था कि वे घरेलू बाजार पर ही ध्यान केन्द्रित करतीं। उपयोग में लाई जा रही उत्पाद प्रौद्योगिकी साधारणतया पुरानी और अप्रचलित होती थी तथा इनका भारतीय दशाओं से अनुकूलन भी किया गया था। तथापि, कुछ मामलों में भारतीय दशाओं से उतना मतलब नहीं था और प्रतिस्पर्धा की कमी के कारण उत्पाद निर्यात योग्य नहीं रह गए थे।

ख) प्रतिस्पर्धात्मकता को अवरुद्ध करने वाला दूसरा अर्थव्यवस्था व्यापी घटक माँग की मात्रा है जो फर्मों को बड़े पैमाने की मितव्ययिता का लाभ नहीं उठाने देता है। हम सभी फर्मों को



निम्नलिखित तीन समूहों में विभक्त कर सकते हैं:

- i) वे फर्म जहाँ उद्योग के उत्पादों के लिए पर्याप्त माँग है और फर्म की क्षमता विपणन, अनुसंधान और विकास, गुणवत्ता नियंत्रण आदि में बड़े पैमाने की मितव्ययिता का लाभ उठाने के लिए पर्याप्त है;
- ii) वे फर्म जहाँ उद्योग के उत्पादों की माँग तो पूरी है किंतु नीतिगत कारणों से पर्याप्त क्षमता नहीं है; और
- iii) वे फर्म जहाँ उद्योग के उत्पादों की माँग भी कम है और उत्पादन की क्षमता भी अपर्याप्त है।

इसमें से सिर्फ तीसरे समूह में ही वास्तव में बाज़ार का आकार बाधक है। वैसे उत्पादों में, भारतीय उत्पादकों को अन्तरराष्ट्रीय मानकों की तुलना में लागत दण्ड भुगतना पड़ता है।

- ग) कुछ ऐसे भी घटक हैं जो भारतीय संदर्भ में विशिष्ट हैं और यहाँ बड़े अवरोध के रूप में उल्लेखनीय हैं। भारत की जटिलता, इसकी विषमता, इसकी विचित्रता, इसका अराजक लोकतंत्र, व्यवसाय, औपनिवेशिक विरासत, दुस्साध्य श्रम इत्यादि कुछ ऐसे घटक हैं जो कथित रूप से तीव्र विकास और कार्यकुशलता को अवरुद्ध करते हैं।

संक्षेप में, भारतीय उद्योग के कमजोर अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता के कारणों पर इस भाग में हमने नोट किया कि भारत में सरकारी नीतियों ने किस तरह से प्रतिस्पर्धात्मकता को अवरुद्ध करने के लिए परस्पर पूरक रूप में कार्य किया। अत्यधिक केन्द्रीकरण, वृद्धि में अवरोध, नए उद्योगों की स्थापना के खतरा का अभाव, आयात प्रतिस्पर्धा का न होना, उद्योग बंद करने में अड़चनें, नियमों विनियमों के भँवरजाल इत्यादि के परिणामस्वरूप अक्षम फर्मों का प्रसार हुआ, लागतपरि मूल्य-निर्धारण व्यवहार और बेगार अथवा प्रत्यक्ष अनुत्पादक कार्यकलाप को बढ़ावा मिला। चूँकि आयात की अनुमति नहीं थी, उच्च लागत वाले घरेलू उत्पाद का अर्थव्यवस्था पर क्रमिक प्रभाव पड़ा जिससे अत्यन्त कार्यकुशलता से उत्पादित वस्तुएँ भी मूल्य-प्रतिस्पर्धी नहीं रह गई थीं। इतना ही नहीं, चूँकि उच्च लागत वाले कई उत्पाद उद्गमोन्मुख क्षेत्र में थे, शेष अर्थव्यवस्था पर उनका प्रभाव असमानुपातिक रूप से फैला हुआ था। उच्च लागत का माँग पर भी नकारात्मक प्रभाव था जिसके परिणाम स्वरूप प्रौद्योगिकीय विकास और कार्यकुशलता में प्रगति की गति धीमी पड़ गई।

## बोध प्रश्न 2

- 1) सरकारी नीतियों की उन मुख्य विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिए जिन्होंने भारतीय उद्योग की अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाला।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) अर्थव्यवस्था व्यापक घटक कौन-कौन से हैं जो भारतीय उद्योग की अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता को प्रभावित करते हैं?

## 5.5 सुझाए गए उपचार

नब्बे के दशक के प्रारम्भ के साथ ही, उद्योग संबंधी सरकारी नीतिगत ढांचा में परिवर्तन होने लगा। विभिन्न नियंत्रणों में कमी की गई, विभिन्न अवरोधों को हटाया गया; विनियमों को अधिक लचीला और सरल बनाया गया। घरेलू और विदेशी दोनों प्रकार के निजी क्षेत्र के उद्यमों के प्रति पहले जो धारणा थी उसमें नाटकीय परिवर्तन आ गया। व्यापार संबंधी नीति आयात प्रतिस्थापन की जगह निर्यात संवर्द्धन को बढ़ावा देती है। अन्तर्मुखी नीति का स्थान बहिर्मुखी नीति ने ले लिया है।

भारत स्वयं भूमंडलीकरण के पथ पर चल पड़ा है। भूमंडलीकरण का अभिप्राय श्रम के अन्तरराष्ट्रीय विभाजन में बढ़ती हुई सहभागिता है।

श्रम के अन्तरराष्ट्रीय विभाजन में सफलता पाने के लिए आवश्यक है कि उद्योग की अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक सामर्थ्य को बढ़ाया जाए। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए विभिन्न उपाय सुझाए जा सकते हैं। इन उपायों को दो समूहों में विभक्त किया जा सकता है :

- क) वे उपाय जिनका उद्देश्य अनुकूल समष्टि वातावरण उत्पन्न करना है; तथा
- ख) वे उपाय जिन्हें फर्म स्तर पर शुरू करने की आवश्यकता है।

### 5.5.1 अनुकूल समष्टि परिवेश के सृजन के उपाय

समष्टि परिवेश को इस तरह से तैयार किए जाने की जरूरत है कि हम विश्व स्तरीय उद्योगों का सफलतापूर्वक सृजन कर सकें। विश्व स्तरीय उद्योग का सृजन रातों-रात नहीं किया जा सकता। अगले कुछ वर्षों में इसे मूर्त रूप देने के लिए अभी से ही उपाय करने की जरूरत है।

इन दो योजनाओं को अवश्य कार्यान्वित करना चाहिए :

एक, बाजार की दशाओं में परिवर्तन किए जाने की जरूरत है ताकि भारतीय उद्योग भूमंडलीय स्तर पर सोच सकें तथा कार्य कर सकें।

सम्यक् बाजार दशाओं के सृजन में भारतीय उद्योग को अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धियों की भाँति कार्य स्वतंत्रता और आदानों की सुलभ उपलब्धता सम्मिलित हो। इसका अर्थ यह हुआ कि भारतीय उद्योग को पूरे संसार में फैले अपने प्रतिस्पर्धियों की भाँति सस्ते अन्तरराष्ट्रीय वित्त का लाभ उठाने, अपनी पसंद की प्रौद्योगिकी खरीदने, विश्व भर से प्रतिभा की तलाश करने तथा घटक बाजारों में स्वतंत्र रूप से कार्य करने की अनुमति मिलनी चाहिए। इसका अभिप्राय तीव्र परिसमापन, तेजी से विलय और अधिग्रहण सुनिश्चित करने के लिए नई प्रक्रिया निर्धारित करना, केन्द्रीय भू-हृदबंदी विनियमन

अधिनियम समाप्त करना और श्रम कानूनों को उदार बनाना आदि जैसे सुधार करना है।

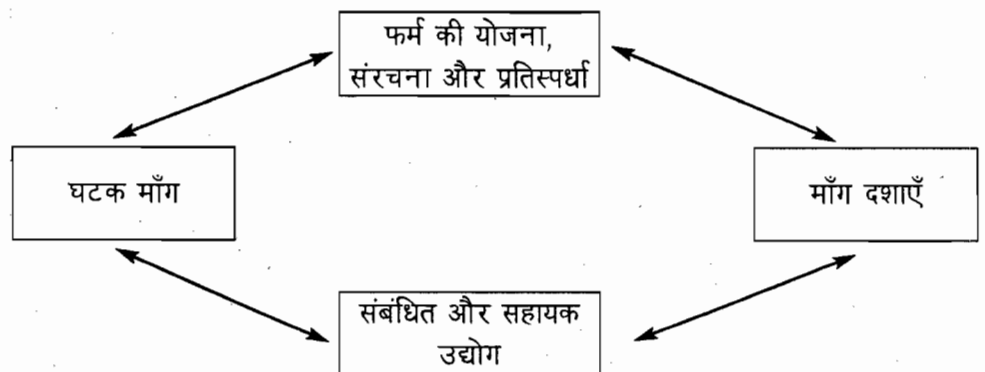
विपणन के मोर्चे पर उद्योग के मानस में बदलाव की आवश्यकता है। उत्पादन अभिविन्यास जो संरक्षण की स्थिति में उपयुक्त था, से बाजारोन्मुखी अभिविन्यास में परिवर्तन आवश्यक है क्योंकि प्रतिस्पर्धी वातावरण में यह जरूरी है। उनके रवैये में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है जैसे लागतपरि कीमत निर्धारण की अपेक्षा प्रतिस्पर्धी कीमत निर्धारण, गुणवत्ता, माल पहुँचाने इत्यादि में उपभोक्तों की शिकायतों के प्रति संवेदनशील होना और कोई न कोई बहाना बना कर टाल-मटोल करने की जगह वारंटी और गारंटी की शर्तों को पूरा करना।

दो, हमें मानव की दक्षता को हर क्षेत्र में, उदाहरण के तौर पर कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर से लेकर हवाई जहाज के रख-रखाव तक, बढ़ाने के लिए संस्थाओं की स्थापना करने की जरूरत है। विनिर्माण और सेवाओं के क्षेत्र में प्रौद्योगिकीय उन्नति के कारण बड़ी संख्या में सस्ते अकुशल श्रम के स्थान पर सस्ते कुशल श्रम की आवश्यकता बढ़ गई है। सभी गणनाओं से पता चलता है कि आने वाले वर्षों में माँग को पूरा करने के लिए बड़ी संख्या में कुशल लोगों की आवश्यकता होगी। हमें अपने 'ज्ञान आधारभूत संरचना' के अत्यधिक उन्नयन करने की आवश्यकता है और इसका अर्थ अन्तरराष्ट्रीय कानून, बौद्धिक सम्पदा अधिकारों, विदेशी न्यायिक पद्धतियों, विदेशी भाषाओं और अन्य विषयों जिसकी जानकारी, अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने वाले किसी भी व्यक्ति को होना चाहिए, के लिए संस्थाओं की स्थापना है।

तीन, यदि हम अपने उद्योग को विश्वस्तरीय बनाना चाहते हैं तो हमें अन्तरराष्ट्रीय कारपोरेट और वित्तीय मानदण्डों के अनुरूप नियम और विनियम भी बनाने की आवश्यकता होगी। कानून और संस्थाएँ एक राज्य और समाज का 'सॉफ्टवेयर' है। नई सहस्राब्दि में सफल आर्थिक निष्पादन के लिए उनमें सुधार तथा उनका प्रभावी कार्यान्वयन अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होगा।

### 5.5.2 फर्म स्तर पर उपाय

भारतीय उद्योगों को विश्वस्तरीय बनाने की जरूरत है। विश्वस्तरीय बनाने के लिए उद्योग को संगठनात्मक संरचना और कारपोरेट दर्शन से लेकर बुनियादी अनुसंधान और विकास तथा विपणन में निवेश तक व्यापार करने के तरीकों में सोच-विचार कर परिवर्तन करना होगा। एक, अन्तरराष्ट्रीय बाजारों में सफल होने के लिए, भारतीय उत्पादकों की प्रतिस्पर्धात्मकता को सुधारना होगा। प्रतिस्पर्धात्मकता में विभिन्न अवरोधों को नीचे दिए गए रेखाचित्र 5.1 से स्पष्ट किया जा सकता है :



रेखाचित्र 5.1 प्रतिस्पर्धात्मकता के अवरोधक

उच्च उत्पादकता वृद्धि, उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद और उत्पादों में नवीनता और प्रक्रिया प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है। उद्योग को न सिर्फ अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी प्राप्त करने के लिए, अपितु लागत में कटौती करने, कार्यकुशलता बढ़ाने तथा साझा प्रयासों से विश्व बाजार में अपने

लिए जगह बनाने के लिए रणनीतिक समझौता करना पड़ता है।

दो, भारतीय उद्योग को भूमंडलीय परिवेश की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालना चाहिए। यह व्यापार का एक पहलू है जो उस पहलू से बिल्कुल भिन्न है जिसमें भारतीय कारपोरेट क्षेत्र को कार्य करने की आदत थी। यह प्रतिस्पर्धा प्रेरित है। यह उत्पादन, गुणवत्ता, बाजार, उपभोक्ता सेवा, उत्पाद विकास, प्रौद्योगिकी में नवीनता, लागत को कम करने और वित्तीय संरचना से उत्प्रेरित है।

इस रूपरेखा के अंतर्गत हम निम्नलिखित सुझाव दे सकते हैं :

- i) व्यक्ति को उसकी योग्यता के आधार पर काम पर रखिए न कि उसके पारिवारिक संबंधों के आधार पर।
- ii) संगठन के अंदर कार्यकुशलता को अद्यतन बनाने के लिए उद्योग व्यापी प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू कीजिए।
- iii) उच्च लागत ऋण को अल्प लागत इक्विटी से प्रतिस्थापित कीजिए तथा ऋण की तुलना में इक्विटी अनुपात में वृद्धि कीजिए।
- iv) अभी तक उपेक्षित विनिर्माण कार्य के लिए भर्ती और उन्हें पर्याप्त पारिश्रमिक देने पर अधिक ध्यान दीजिए।
- v) विनिर्दिष्ट और माप योग्य लक्ष्य निर्धारित करके पूरे उद्योग में गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम शुरू करना।
- vi) खरीदी गई प्रौद्योगिकियों से अनुकूलन के लिए आंतरिक अनुसंधान और विकास का सृजन करना ताकि संगठन के पास निरंतर प्रक्रिया और उत्पाद नवीनता पहुँचती रहे।
- vii) लागत कम करने के लिए पूरे उद्योग में कार्यक्रम चलाया जाए ताकि लागतपरि मूल्य निर्धारण जो सिर्फ एक बंद अर्थव्यवस्था में ही संभव था के स्थान पर लागत कम करने और गुणवत्ता में सुधार करने की प्रवृत्ति पर जोर हो।
- viii) संचार, वस्तुपरक निष्पादन मूल्यांकन, पुरस्कार, उत्तरदायित्व, पदसोपान में कमी इत्यादि के माध्यम से सभी कर्मचारियों की पूरी सहभागिता प्राप्त करना।
- ix) पूरा संगठन उपभोक्ताओं और उनकी संतुष्टि पर ध्यान केन्द्रित करे।
- x) कारपोरेट प्रगति की तुलना विश्व में जो सर्वोत्तम है उसके साथ की जाए न कि सिर्फ उनके साथ जो भारत में प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं।
- xi) पूरे संगठन में नई सूचना प्रौद्योगिकी का प्रसार होने दीजिए।

तीन, भारत में आनेवाली बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारतीय बाजारों में अपने भूमंडलीय नेटवर्क का विस्तार करेंगी। भारतीय उद्योग को अवश्यमभावी रूप से अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उतनी संगठनात्मक कार्यकुशलता अर्जित करनी होगी जो उनके प्रतिस्पर्धियों की कार्यकुशलता के बराबर हो। उन्हें आने वाली विदेशी कंपनियों से प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए घरेलू बाजार में अपनी प्रतिस्पर्धा क्षमता बढ़ाने हेतु विदेशी साझेदार की ओर रुख करना होगा।

भूमंडलीकरण की दौड़ में उपयुक्त साझेदार के चयन से स्थिति पूरी तरह से बदल सकती है। एक सफल गठबंधन में, दोनों साझेदार अपने रणनीतिक उद्देश्यों को पूरा करते हैं, दोनों को वित्तीय लाभ होता है और उनकी साझेदारी लम्बे समय तक चलती है। उद्देश्यों की स्पष्टता से गठबंधन साझेदार के चयन में आसानी होती है। उद्देश्यों के एक बार स्पष्ट हो जाने के बाद, उद्योग को विशेष रूप से इसी उद्देश्य के लिए विकसित कई कसौटियों के आधार पर

संभावित साझीदारों का मूल्यांकन करना चाहिए। उपयुक्त साझीदार के चयन में साझीदार की कुशलता, उसका व्यवसाय में योगदान, वित्तीय सुदृढ़ता और सांस्कृतिक अनुरूपता आदि कुछ प्रमुख विचारणीय बिन्दु हैं।

चार, प्रतिस्पर्धात्मक लाभ उठाने में मुख्य बाधाओं जैसे माँग दशाएँ, आपूर्तिकर्ता उद्योग को दूर करके इन उद्योगों को प्रतिस्पर्धा में लाभ की स्थिति में रखने के लिए घरेलू प्रतिस्पर्धा और सहायक आधारभूत संरचना को बढ़ावा देना चाहिए। विश्वस्तरीय प्रतिस्पर्धात्मकता की निरंतरता तभी बनाए रखी जा सकती है जबकि प्रौद्योगिकी का उन्नयन और मानवीय कुशलता में सुधार भी सतत् रूप से होता रहे। विकास के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर निर्भरता बहुत ही चुनिंदा होना चाहिए और सिर्फ वहीं मदद लेनी चाहिए जहाँ देश के दीर्घकालीन हितों की रक्षा की जा सके।

पाँच, भारतीय उद्योग को भूमंडलीकरण के अपने सफर में उन देशों जिस पर वे अपना ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं के चयन में काफी सतर्क होना चाहिए। इस कार्य में तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए :

- i) भारतीय उद्योगों को उन देशों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जहाँ वे अपेक्षाकृत लाभ की स्थिति में हैं। इस दृष्टिकोण से, एशिया, विशेष कर पश्चिम एशिया और पूर्वी एशिया, में कई देशों और विश्व में उदीयमान अन्य देशों, विशेषकर दक्षिण अमेरिका में और दक्षिण अफ्रीका की सिफारिश की जा सकती है जहाँ भारतीय उद्योग भाग्य आजमा सकते हैं।
- ii) भारतीय उद्योगों को उन अर्थव्यवस्थाओं में प्रवेश करने का प्रयास करना चाहिए जहाँ बाजार उच्च वृद्धि दर पर बढ़ रहे हैं। वैसे परिवेश में सबके लिए संभावनाएँ रहती हैं तथा प्रतिद्वंदियों की जवाबी कार्रवाई की संभावना नहीं रहती है।
- iii) भारतीय उद्योगों को उन देशों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जहाँ गुणवत्ता मानक बहुत उंचे नहीं हैं। उन देशों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के बाद एक उद्योग विश्वस्तरीय पैमाना प्राप्त कर सकता है और अन्य देशों में प्रवेश करने से पहले अपने उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार कर सकता है।

### 5.5.3 अन्तरराष्ट्रीय संरक्षणवाद का सामना करने के उपाय

भारत को बढ़ते हुए अंतरराष्ट्रीय संरक्षणवाद का सामना करना ही होगा। संरक्षणवाद दो रूपों में है:

(i) उद्योग - विशेष संरक्षणवाद (ii) उत्पाद-विशेष संरक्षणवाद।

- i) उद्योग- विशेष संरक्षणवाद से मुकाबला करने की रणनीति का एक भाग बहुपक्षीय निकायों को सुदृढ़ बनाना होगा जो सभी व्यापारों के लिए समान मापदंड निर्धारित करता है। दूसरा उपाय यह हो सकता है कि स्थानीय उद्योग में विदेशी पूँजी का हिस्सा बढ़ाया जाए, जिससे यह सुनिश्चित होगा कि इस पूँजी के हितों के वास्ते उन्हें अपने देश में संरक्षणवादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध कार्य करना होगा।
- ii) उत्पाद- विशेष संरक्षणवाद का मुकाबला विकसित विश्व के बाजारों में अपने उत्पाद के प्रति निष्ठा पैदा करके की जा सकती है। इसके लिए वृहद् परिमाण में निर्यात करने की अपेक्षा ब्राण्ड वाले वस्तुओं का निर्यात करना होगा।
- iii) एक प्रभावशाली अन्तरराष्ट्रीय गठबंधन विकसित करने के लिए अल्प प्रयास किए गए हैं। फलतः भारत के पास एक ऐसा मंच नहीं है जिससे वह हैसियत के साथ दृढ़तापूर्वक बातचीत कर सके। भारत दक्षिण-दक्षिण सहयोग के प्रति निष्ठावान रहा है हालाँकि इस सहयोग का प्रभावक्षीण हो गया है क्योंकि अन्य विकासशील देश क्षेत्रीय गुटों में प्रवेश का प्रयास कर रहे हैं। आर्थिक गठबंधन के प्रति अधिक यथार्थवादी रवैया यह होगा कि उन देशों की ओर रूख किया जाए जिनके पास न सिर्फ भारत को देने के लिए कुछ है अपितु वे भी किन्हीं कारणों से भारत के साथ गठबंधन करना चाहते हैं।

संक्षेप में, विश्व अर्थव्यवस्था के साथ सफलतापूर्वक एकीकरण के लिए अपने देश में परस्पर पूरक नीतियाँ और संस्थाएँ होनी चाहिए। नीति निर्माताओं को उदारीकरण की बाह्य रणनीति को अधिक सबल बनाने के लिए इस तरह की आंतरिक रणनीति बनानी चाहिए जो राज्य को भौतिक और मानव पूँजी के निर्माण तथा सामाजिक द्वंद्व को कम करने की भारी जिम्मेदारी सौंपती है।

### बोध प्रश्न 3

- 1) उन उपायों के बारे में बताइये जिनसे प्रतिस्पर्धात्मकता प्राप्त करने के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो सके।

.....

.....

.....

.....

.....

- 2) आपके विचार में एक फर्म को प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता हासिल करने के लिए क्या उपाय करना चाहिए, सुझाव दें।

.....

.....

.....

.....

.....

- 3) बढ़ते हुए अन्तरराष्ट्रीय संरक्षणवाद का सामना करने के उपाय सुझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

## 5.6 सारांश

भारत उद्योग की अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता के क्षेत्र में विश्व के अन्य देशों से काफी पीछे है। हाल ही में किए गए व्यापक नीतिगत परिवर्तनों के बावजूद भी यदि भारत अपनी स्थिति में और सुधार चाहता है तो इसे बहुत कुछ करना होगा। यह सिर्फ उपयुक्त मूल्य निर्धारित करने का प्रश्न नहीं है अर्थात् सिर्फ उन्हीं नीतियों को नहीं बदलना है जो घटक आदानों के सापेक्षिक मूल्यों और निवेश तथा निर्यात के लिए प्रोत्साहन को प्रभावित करते हैं। महत्वपूर्ण यह है कि आयातित प्रौद्योगिकी के दक्ष आत्मसातीकरण और प्रभावी अन्तर- फर्म सहलग्नता का पोषण

करके इसके प्रसार को बढ़ावा देने, मानव पूँजी के सृजन और विकास को उत्प्रेरित करने, राष्ट्रीय मानक का प्रतिमान विकसित करने, द्रुत और पारदर्शी न्यायिक प्रणाली सुनिश्चित करने और उच्च गुणवत्ता तथा समय पर सूचना प्रदान करने के लिए संस्थाओं का उपयुक्त समूह होना चाहिए।

## 5.7 शब्दावली

प्रतिस्पर्धात्मक बाज़ार	:	एक बाज़ार जिसमें बड़ी संख्या में छोटे खरीदार और विक्रेता स्वतंत्र रूप से व्यापार करते हैं और कोई एक व्यापारी मूल्य को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित नहीं कर सकता है।
प्रतिस्पर्धात्मकता	:	एक फर्म अथवा उद्योग की क्षमता कि वह अपने प्रतिद्वंद्वियों के उसी प्रकार के उत्पादों के बीच उपभोक्ताओं में अपने उत्पाद के लिए पसंद पैदा कर सके।
बाज़ार का हिस्सा	:	बाज़ार में कुल बिक्री का अनुपात जो एक या अधिक फर्मों के हिस्से में हो।
मूल्य नियंत्रण	:	सरकार के सांविधिक आदेश द्वारा मूल्य निर्धारण से संबंधित है।
प्रक्रिया	:	आदानों का विशेष संयोजन, जिसकी मात्रा में परिवर्तन अधिक उत्पादन के लिए किया जा सकता है।
तकनीकी प्रगति	:	वह प्रक्रिया जिसके द्वारा श्रम और पूँजी के आदानों की मात्रा में परिवर्तन किए बिना अधिक उत्पादन किया जा सकता है।

## 5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ

दिलीप मुखर्जी (संपा.); (1997). *इण्डियन इण्डस्ट्री, पॉलिसीज़ एण्ड पर्फॉर्मेंस*, ऑक्सफोर्ड, कलकत्ता, अध्याय 5, भारत सरकार, *आर्थिक सर्वेक्षण*, नई दिल्ली, वार्षिक।

आई.जे. अहलूवालिया; (1991). *प्राडक्टिविटी एण्ड ग्रोथ इन इंडियन मैनुफैक्चरिंग*, ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली।

आई.सी. ढींगरा; (2001). *द इंडियन इकनॉमी, एन्वायरनेटमेंट एण्ड पॉलिसी*, सुल्तान, नई दिल्ली।

जगदीश भगवती; (1993). *इंडिया इन ट्रांजिशन : फ्रीइंग द इकनॉमी*, क्लेअरडान प्रेस, ऑक्सफोर्ड।

पी.एस. पालाण्डे; (2000). *कोपिंग विद लिबरलाइजेशन*, रिस्पॉन्स, नई दिल्ली। अध्याय 2-6.

वर्ल्ड इकनॉमिक फोरम; *द वर्ल्ड कम्पीटिविनेस रिपोर्ट*, वर्ल्ड इकनॉमिक फोरम, जेनेवा।

## 5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

### बोध प्रश्न 1

- 1) भाग 5.1 देखें।
- 2) भाग 5.2 देखें।

### बोध प्रश्न 2

- 1) उपभाग 5.4.1 देखें।
- 2) उपभाग 5.4.2 देखें।

### बोध प्रश्न 3

- 1) उपभाग 5.5.1 देखें।
- 2) उपभाग 5.5.2 देखें।
- 3) उपभाग 5.5.3 देखें।